जनवरी-जून 2019

रेवान्त

साहित्य और संस्कृति की त्रैमासिक

मूल्य : पैंतीस रुपये

कवयित्री अनामिका 'रेवान्त' मुक्तिबोध साहित्य सम्मान से सम्मानित

कथाकार डा. गिरीश चन्द्र श्रीवास्तव 'रेवान्त' साहित्य सम्मान से सम्मानित

रेवान्त

साहित्य एवं संस्कृति की त्रैमासिक पत्रिका

अंक : 33-34 (संयुक्तांक)
जनवरी-जून 2019

प्रकाशक
ऐश्वर्या सिन्हा

संरक्षक
विनीता मिश्र

प्रधान संपादक
कौशल किशोर

संपादक
डॉ. अनीता श्रीवास्तव

सलाहकार
संध्या सिंह
सरोज सिंह, अल्का प्रमोद

उप संपादक
विमल किशोर, रोली श्रीवास्तव, कुसुम वर्मा
भावना मौर्य, आभा खरे, सत्या सिंह
रत्ना श्रीवास्तव

प्रबन्ध सहयोग
सीमा मधुरिमा, साज़िदा सबा

संपादकीय कार्यालय
फ्लैट नं. 88, सी-ब्लाक, लेखराज नगीना,
चर्च रोड, इन्दिरा नगर, लखनऊ-226016
मोबाइल : 9839356438, 9621691915
Email : anitasrivastava249@gmail.com
kaushalsil.2008@gmail.com
मोबाइल : 8400208031, 8840503142

मूल्य : 35/- रुपया
वार्षिक सदस्यता : 250 रुपये, पांच वर्ष : 900 रुपये
आजीवन सदस्यता : 3500 रुपये

संस्थाओं के लिए सदस्यता शुल्क
वार्षिक : 300 रुपये, पांच वर्ष : 1100 रुपये
आजीवन : 4500 रुपये
(मनीआर्डर, चेक, बैंक ड्राफ्ट द्वारा समस्त भुगतान 'रेवान्त पत्रिका' के नाम से लिये जायेंगे)।

प्रकाशित रचनाओं के विचार से संपादक का सहमत होना अनिवार्य नहीं। समस्त विवाद लखनऊ न्यायालय के अन्तर्गत विचारणीय।

इस बार ...

संपादकीय

नवगीतों पर कुछ बातें.... : 2
लोकसभा में महिलाएं... : 4

स्मृति

कृष्णा सोबती : कविताएं भी लिख गई थी 'वह लड़की' : ***अतुल सिन्हा*** : 5
आरा का पूर्वांचल गोष्ठी प्रसंग और नामवर सिंह : ***रामनिहाल गुंजन*** : 7
गिरीश चन्द्र श्रीवास्तव : यथार्थवादी कथाकार का जाना : ***आशीष सिंह*** : 10
रमणिका गुप्ता : ***बजरंग बिहारी*** : 15
रमणिका गुप्ता की कविताएं : 16

काल से होड़

रामेश्वर प्रशान्त और ***मिथिलेश श्रीवास्तव*** की कविताएं : 18

कहानियाँ

मुसलमानी : ***स्वप्निल श्रीवास्तव*** : 23
शकील शहनाई और अली जाफरी की कहानी : ***देवांशु पाल*** : 29
फ़ैसला : ***फ़रज़ाना महदी*** : 32

ग़ज़लें

मालविका हरिओम, दयानन्द पाण्डेय और राजेन्द्र वर्मा : 34

आलेख

गीत और नवगीत में अन्तर क्या है? : ***डा. राधेश्याम बन्धु*** : 37
अहिल्या का मौन : ***विनीता मिश्रा*** : 50

डायरी

जेल के बच्चे और उनके खिलौने : ***सीमा आज़ाद*** : 45

कविता संवाद

देवेन्द्र कुमार बंगाली तद्भव के कवि थे : ***अजय कुमार पाण्डेय*** : 58
देवेन्द्र कुमार बंगाली की कविताएं : 61

कविताएं

दिव्या शुक्ला, संगसार सीमा, अनुपमा तिवाड़ी और पूर्णिमा मौर्य : 40
संतोष कुमार चतुर्वेदी, नीलोत्पल रमेश और सुमन कुमार सिंह : 54

मंच

स्वप्निल श्रीवास्तव, विजय पुष्पम और डा. राधेश्याम बन्धु के पत्र : 64

नवगीतों पर कुछ बातें.....

हिन्दी कविता की दुनिया अपने विविध काव्य रूपों को लेकर बनी है। इस संदर्भ में किसी एक रूप पर अत्यधिक जोर और अन्य पर उपेक्षा का भाव अंततः कविता की इस दुनिया को सीमित व संकुचित कर देना है। गीत, नवगीत, हिन्दी गजल, दोहे, मुक्त छंद, छंद मुक्त आदि इन सभी काव्य रूपों से कविता की दुनिया बनती है। लेकिन देखा गया कि हमारे साहित्य चिंतकों व आलोचकों ने छन्द मुक्त को ही कविता का मुख्य रूप माना है, उसे ही कविता के रूप में प्रतिष्ठित किया है और साहित्य विमर्श के केन्द्र में रखा है। इसकी वजह से अन्य काव्य रूपों पर जितना विचार-विमर्श होना चाहिए, वह नहीं हुआ है या कम हुआ है।

छायावादोत्तर काल में कविता में परिवर्तन का आरंभ शुरू होता है, न सिर्फ अपनी अंतर्वस्तु में बल्कि रूप में भी। इसका मुख्य श्रेय निराला को जाता है। उन्होंने न सिर्फ कविता की जमीन में परिवर्तन लाने की दिशा में काम किया बल्कि गीतों में भी यह परिवर्तन देखने में आया। निराला ने कविता और गीतों के बने बनाए रूपों में क्रांतिकारी परिवर्तन लाने का काम किया। कविता और गीत दोनों जीवन के और करीब आए। उनमें समष्टि का दर्शन होता है। कविता यथार्थवादी बनती है और शिल्प भी नया दिखता है। साठ के दशक में जो गीत नए रूप में सामने आए वे पहले से लिखे जाने वाले गीतों से वस्तु और रूप दोनों लिहाज से भिन्न थे। निराला के गीतों में यह परिवर्तन सांफ दिखता है जहां गीतों की भाषिक संरचना उनके पूर्ववर्ती गीतों से भिंन्न है।

माना जाता है कि 1958 में राजेंद्र प्रसाद सिंह के संपादन में 'गीतांगिनी' के प्रकाशन से नवगीतों का आरंभ होता है लेकिन देखा जाए तो इसका आरंभ या उसकी पृष्ठभूमि पहले से ही तैयार हो गई थी। जीवन व समाज और उसके यथार्थ में आए बदलाव ही गीतों में बदलाव के कारण थे। इसे निराला ने सबसे पहले पकड़ा और व्यक्त किया क्योंकि समष्टि की चिंता और यथार्थ से मुठभेड़ निराला की खास विशेषता रही है।

कुछ का मत है कि जिस तरह कविता के क्षेत्र में नई कविता आयी, उसी तरह गीत विधा में नवगीत का अभ्युदय हुआ। यह बात सही नहीं है। नयी कविता का दौर प्रयोगवादी कविता का दौर रहा है। इसमें सामाजिक यथार्थ की उपेक्षा हुई। कविता से राजनीतिक व सामाजिक सरोकार को बाहर का रास्ता दिखाया गया। कविता में मौन की रचना हुई, सन्नाटा बुना गया। इस दौर में पश्चिम की आधुनिकतावादी प्रवृत्ति हिन्दी कविता पर हावी थी। अज्ञेय शीर्ष पर थे। उनके नेतृत्व में 'तार सप्तक' के माध्यम से जो काव्य प्रवृत्ति हिंदी कविता के क्षेत्र में प्रभावी थी उसके बारे में मुद्राराक्षस की टिप्पणी थी कि इस पर पश्चिम का प्रभाव है बल्कि यह उसका अंधानुकरण और नकल है।

इस तरह नई कविता में प्रयोगधर्मिता उसका प्रधान तत्व था। वह प्रतीकों व बिम्बों में उलझी तथा जनमानस से कटी हुई थी। वहीं, नवगीतों में जीवन-जगत से जुड़ाव व लोकधर्मिता का तत्व विद्यमान रहा है। स्वतंत्रता के बाद भारतीय समाज का जो नया यथार्थ था, उससे वह रूबरू हुआ। शहरों व महानगरों का बनना व उसका विस्तार, गांव से महानगरों व शहरों की ओर पलायन, मध्य वर्ग का विकास, जीवन की जटिलता व जद्दोजहद, आपाधापी, कश-म-कश- यह जो नया यथार्थ था, नवगीतों ने इससे रिश्ता बनाया और इसे अभिव्यक्त किया। गीतों की कोमलता, भावुकता और श्रृगांरिकता की जगह जनजीवन का जो यथार्थ था, वह नवगीतों में आया। स्वभाविक था कि भाषिक संरचना और शिल्पगत ढ़ांचें में भी बदलाव आना था, वह आया। इस संबंध में एक बड़ी बात या महत्वपूर्ण बात यह है कि जहां नई कविता जन सामान्य से कटी हुई थी, नवगीत अपने लय, तुक, ध्वनि, प्रवाह की वजह से उसकी संप्रेषणीयता बनी रही। निराला के शब्दों में कहूं 'नव गति, नव लय, ताल छन्द नव' यह नवगीत का मूल है। किसी ने इसे नवगीत का बीज मंत्र भी कहा है।

सार रूप में कहा जा सकता है कि नवगीतों में जनजीवन की अनुभूति और संवेदना है। उसमें जनमानस से जुड़ाव का प्रमुख तत्व है। वह लिखी जाती रही है। उसका प्रचार-प्रसार होता रहा है। आज के दौर के अभिव्यक्ति के विभिन्न माध्यमों से वह सामने आ रही है। नयी तकनीक के विकास और विस्तार में उसने अपने को विस्तारित किया है। देखा जाय तो वह समकालीन कविता से जुड़ती भी है और उससे अलहदा भी है। रूप में भिन्नता है तो दोनों की वैचारिक जमीन में बहुत कुछ समानता है। अपने स्ट्रक्चर की वजह से वह गीतों से भी अलग है।

जब हिंदी कविता नई कविता के कलावाद और अकविता के अराजकतावाद से मुक्त हो रही थी, आजादी को लेकर जो मोह था, वह भंग हो रहा था, उसका स्वर व्यवस्था विरोधी हो रहा था तथा कविता में जनवाद और समष्टिवाद का स्वर प्रमुख हो रहा था, हम पाते हैं कि नवगीतों में भी इस यथार्थ की अभिव्यक्ति होती है, व्यवस्था के प्रति आलोचना का स्वर प्रखरता के साथ सुनाई पड़ता है। यही दौर है जब धूमिल बीस साला आजादी पर सवाल उठाते हुए अपनी कविता में कहते हैं 'बीस साल बाद मैं अपने आप से सवाल करता हूं/क्या आजादी तीन थके रंगों का नाम है/जिसे एक पहिया थोता है/या इसका कोई खास मतलब होता है'। उस समय रमेश रंजक के 'हरापन नहीं टूटेगा', 'मट्टी बोलती है' और 'इतिहास दुबारा लिखो' जैसे नवगीत संग्रह आते हैं। वे कहते हैं 'लिख रही हैं वे शिकन/जो भाल के भीतर पड़ी हैं/वेदनाएँ जो हमारे/वक्ष के ऊपर गढ़ी हैं/बन्धु! जब-तक/दर्द का यह स्रोत-सावन नहीं टूटेगा/हरापन नहीं टूटेगा'। रमेश रंजक के गीतों का स्वर शोषक व्यवस्था के प्रति मारक होता जाता है 'दमन की चक्की पीस रही इन्सान/बापू के बन्दर की नाई बैइठे हैं बेईमान'। नवगीत जनगीत के करीब पहुंच जाता हैं। यही समय है जब गीतों में भी क्रांतिकारी स्वर हमें सुनने को मिलता हैं। गोरख पांडेय, शलभ श्रीराम सिंह, महेंद्र नेह आदि ने ऐसे गीतों की रचना की जिनमें व्यवस्था विरोध का स्वर उभरता है। जनभाषाओं में भी गीतों की रचना हुई।

फिर प्रश्न है कि हिन्दी आलोचना की नजर में धूमिल तो प्रासंगिक है, आलोचकों की दृष्टि में वे अकविता से समकालीन कविता के बदलाव के प्रतिनिधि कवि के रूप में प्रतिष्ठित हैं लेकिन रमेश रंजक और अन्य नवगीतकार उपेक्षित क्यों रह जाते हैं? नवगीत विधा ने छः दशक से अधिक की अपनी यात्रा पूरी कर ली है। आज देखा भी जा रहा है कि तमाम छंद मुक्त रचना करने वाले कवि आज गीतों व गजलों की ओर उन्मुख हुए हैं मतलब कविता में लय, तुक व छंदों की वापसी वास्तव में इस बात को प्रतिष्ठित करना है कि हमारे गीतों व नवगीतों की जड़े हिन्दी की जातीय काव्य परंपरा में है। कविता के संप्रेषणीय व संवादधार्मी होने पर जोर बढ़ा है। कहा भी जा रहा है कि गंभीर विचारों को भी सहज व सरल तरीके से कविता में कहा जाय ताकि उसकी प्रभावकारिता बढ़े।

कलावाद और जनवाद के बीच की बहस पुरानी है। वह आज भी किसी न किसी रूप में मौजूद है। एक तरफ कलावादी हैं जिनकी मान्यता है कि कला कला के लिए हो। कलावादी रचनाकार कला सृजन में वस्तु और रूप की द्वन्द्वात्मक एकता को नकारते हैं। उनके लिए रूप प्रधान है, वस्तु गौण। कलावादियों का जोर अपनी कला के द्वारा पाठकों को रहस्य की किसी दुनिया की सैर कराना तथा भाषिक चमत्कार पैदा करने से अधिक नहीं है। इसके बरक्स कला की जनवादी समझ है जो यह मानती है कि कला कुछ न कुछ कहती है, अभिव्यक्त करती है। अर्थात जिस वस्तु यथार्थ को कला अभिव्यक्त करती वह मूल है। रूप का सारा ढ़ाचा इसी पर खड़ा होता है। कला के माध्यम से हम जिस यथार्थ को अभिव्यक्त करते हैं, उसके कलात्मक प्रभाव के लिए ही भाषिक संरचना, बिम्ब विधान, क्राफ्ट व रूप तत्व की आवश्यकता होती है। यहां कला तत्व महत्वपूर्ण है लेकिन रचना का मूल नहीं है। समकालीन नवगीतकारों ने कला के इसी मानदण्ड का पालन किया है और समकालीन जीवन के साथ अपनी प्रतिबद्धता को बार-बार दोहराया है। यह हमारी कविता की यथार्थवादी परम्परा है जो निराला के बाद नागार्जुज, केदार, त्रिलोचन, शील आदि के माध्यम से आगे बढ़ी है।

इस टिप्पणी के आरंभ में ही इस बात को रेखांकित किया गया है कि आलोचकों ने समकालीन कविता पर अपने को केंद्रित किया। यही नहीं, आलोचकों ने वैचारिक विभ्रम भी कम पैदा नहीं किया है। उनके द्वारा कलावाद और जनवाद के बीच की विभाजन रेखा को धुंधला करने का काम किया गया। यह भक्ति काव्य आंदोलन से लेकर प्रगतिशील साहित्य आंदोलन के मूल्यांकन में देखा जा सकता है। आज भी यह प्रवृत्ति जारी है। आलोचना के इसी नजरिये की वजह से कबीर और तुलसी, मुक्तिबोध व अज्ञेय, अशोक वाजपेई व समकालीन जनवादी कवि की साथ साथ प्रतिष्ठा हो रही है।

हमारी कोशिश है कि हिन्दी कविता के विभिन्न काव्यरूपों पर विचार हो। इसी के तहत हमने 'रेवान्त' के पिछले अंक में युवा आलोचक अनिल पाण्डेय का नवगीत पर आलेख प्रकाशित किया था जिसमें समकालीन नवगीत की यथार्थ स्थिति का मूल्यांकन किया गया तथा उन प्रवृतियों की चर्चा की गयी जिसकी वजह यह विधा क्षरण का शिकार हो रही है। इस अंक में डा. राधेश्याम बंधु का आलेख प्रकाशित किया जा रहा है।

कौशल किशोर

-कौशल किशोर